विभाजन केंद्रित उपन्यासों चित्रित स्त्री जीवन की त्रासदी संघर्ष और उसके मानवीय पक्ष

डॉ. आर.पी. वर्मा,
असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉधी राजकीय महिला महाविद्यालय,
रायबरेली, उ.प्र.

विभाजन की सबसे बड़ी त्रासदी विस्थापन के रूप में हुई। यहाँ विस्थापन के संदर्भ में स्त्री जीवन को देखना है। विस्थापन से सबसे ज्यादा दुर्गति स्त्रियों की ही हुई।

विभाजन ने जिस त्रासदी को जन्म दिया वह साहित्यकारों के लिए असह्य था। इसलिये उपन्यास में स्त्रियों की स्थिति, उनकी दुर्गति के जीवंत करुण और हृदय विदारक चित्र उपस्थित हैं, तो स्त्रियों के जीवन संघर्ष और मानवीय पक्षों का इतिहास भी दर्ज है। दरअसल पारम्परिक समाज में आज भी स्त्री का दर्जा वस्तुनिष्ठ सत्ता के रूप में ही है, वह निरन्तर अपने व्यक्तित्व की पहचान कर रही है, अपनी व्यक्तिनिष्ठा सत्ता को हासिल करने के लिए संघर्ष कर रही है। सेक्स से परे जाकर स्त्री पर सोचना परम्परिक समाज के लिए संभव ही नहीं है। स्त्री शब्द ही अपने आपमें एक मुकम्मल सेक्स की पहचान है। स्त्री का अर्थ ही यहां सेक्स से लिया जाता है। इसी कारण स्त्री की अत्यधिक दुर्गति हुई, उसने सबसे बड़ी अमानवीयता को झेला। विभाजन, के दौरान या सांप्रदायिक दंगों के कारण मां, पत्नी, प्रेमिका, बहन और पुत्री जैसे संबंधों को ही मानो हआ दिया गया था। सांप्रदायिक दंगों के समय स्त्री सिर्फ भोग की वस्तु हो जाती है। जिसके साथ सामूहिक बलात्कार होता है दूसरे धर्मावलम्बी जबरन अपने घर में रखते हैं धर्म परिवर्तन पर जोर देते हैं। वेश्यावृत्ति के व्यवसाय में डाल दी जाती है या नीलाम कर दी जाती है। उनके अंगों को काट दिया जाता है। स्त्री जीवन की इसी त्रासदी को उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

विभाजन की सबसे क्रूर त्रासदी स्त्री समुदाय को भोगनी पड़ी। मानकि और शारीरिक दोनों स्तरों पर यह त्रासदी अधिक तीव्र थी। यशपाल ने 'झूठा–सच' में जितनी गहनता से विभाजन के संदर्भ में स्त्री समुदाय की पीड़ा, उनक मनःस्थिति को चित्रित किया है, उतनी सघनता से बहुत कम उपन्यासों में चित्रित किया गया है। तारा, बंतो, उर्मिला, कनक, शीलो ये तमाम पात्र अलग–अलग आयामों पर स्त्री पर हुए अत्याचारों की कहानी को अलग–अलग संदर्भो में प्रस्तुत करते हैं। विभाजन से प्रभावित ये तमाम स्त्री–चरित्र विषम परिस्थितियों से जूझते, संघर्श करती हुई अपने व्यक्तित्व की तलाश करती हैं।

विभाजन की विभीषिका के दौरान असंख्य स्त्रियां दोनों ही भागों में क्रोध का शिकार हुई। हिंदुओं और मुसलमानों में जैसे पशुता की होड़ लगी हुई थी कि कौन विरोधी धर्म की स्त्री के साथ ज्यादा ज्यादती कर सकता है। इस बात की पुष्टि यशपाल 'झूठा–सच' में पृष्ठ–दर–पृष्ठ करते हैं। शरणार्थी कैंप में स्त्रियां आपसी बातचीत में कहती हैं – "हिंदू हो चाहे मुसलमानी, जो अपनी इज्जत लिये मर गयी वही सबसे अच्छी रही। बहनों औरत के शरीर की तो बरबादी ही है। औरत तो ढोर–बकरी है। जो चाहे छीन ले जाए, दुश्मन की चीज समझकर काट डाले। जाने किन

कर्मो के फल से औरत का तन पाया है।" धर्म का नारा लगाने वाले, धर्म के नाम पर देश का विभाजन कराने वाले स्त्रियों के साथ एकदम से अधार्मिक हो गए थे, उन्हें किसी भगवान या अल्लाह का कोई खौफ नहीं रह गया था। मेहर के इस कथन का अर्थ है कि – "मर्द आपस में लड़ते हैं, मिट्टी औरतों की खराब करते हैं।" लाजो का यह समझाना "खुदाबंद ने तो मर्द का फर्ज आयद किया है कि औरत पर रहम करे, और उसकी हिफाजत करे, क्योंकि औरत मर्द को अपने जिस्म से पैदा करती है, और पालती है।" और नब्बू द्वारा तारा को कंजरों के हाथ बेचे जाने की आशंका से मुहल्ले के खुदातरस (धर्मभीरू) लोगो को ताजो ताई का फटकारना कि – "रमजान का मुतबरिक (पवित्र) महीना है, मुहल्ल में यह गुनाह हो रहे हैं.....।" इन सब बातों पर नब्बू की दलील तारा के संदर्भ में भारी पड़ जाती है। जब वह कहता है, "तुम लोगों को क्या मतलब! किसी मुसलमान औरत की तरफ तो आंख नहीं उठायी मैंने हिंदू औरत है। वे लोग नहीं हमारी औरतों को खराब कर रहे हैं। उन लोगों ने कितनी जगह आग लगायी है, रोज बम चलाते हैं। मौलवियों ने जिहाद (धर्म युद्ध) का फतवा दिया है।" नब्बू की यह योजना कि "मैं इसे खराब करके खलीफा के यहां पच्चीस रुपए में दे आऊँगा। और हाफिज का तारा को मुसलमान बनने के लिए जोर देना। दोनों चीजें इस्लाम की दुहाई देकर की जा रही थीं। इस्लाम नहीं कबूल करने पर 'लाइलाहिलिल्लाह मुहम्मद रसूललिल्लाह' की नमाज अदा करने वाला हाफिज तारा को लड़कियों के दलाल के हाथों में सौंप देता है। तारा जैसी हजारों स्त्रियों के लिए जीवन का यह कटु अनुभव एक अंतहीन त्रासदी को जन्म देता है, जिससे आजीवन यह स्त्रियां मुक्त नहीं हो पातीं। यह कुछ उदाहरण इस उपन्यास (झूठा–सच) में है, जो यह सिद्ध करते हैं, कि इस्लाम धर्म वाले हिंदू स्त्रियों के साथ कैसा सलूक करते थे।

यशपाल जी ने दूसरा वर्णन भी उपन्यास में किया है, जो हिंदू धर्मान्धता और उसकी अमानवीयता को दर्शाता है। तारा जब शरणार्थी कैम्प से दिल्ली जा रही थी, तो रास्ते में उसने देखा कि – "एक आदमी खेल करने वाले नट की तरह बांस को ऊँचा उठाए था। उसके साथ के लोग नगाड़ों की तरह कनस्तरों को बजा रहे थे। कुछ लोग होंठों पर उलटी हथेली रखे बकरी को देखकर उन्मादित बकरे की तरह ब्व! ब्व! ब्व! शब्द से हुंकार कर रहे थे। बांस के सिरे पर पर एक स्त्री का नंगा शरीर था। स्त्री बांस के सिर पर टांगे फैलाये अटकी हुई थी। दोनों टांगों पर ताजा खून क्षितिज से झांकते सूर्य की किरणों में चमक रहा था। स्त्री की गर्दन और बांहें निर्जीव, शिथिल लटकी हुई थीं।

बांस उठाकर चलने वाले आदमी के सामने भी हाथों से चेहरे छिपाए चार–पांच नंगी स्त्रियां धकेली जा रही थीं। यह लोग मुस्लिम काफिले को घुणित गलियों से ललकार रहे थे – "ले जाओ! अपनी माओं, बेटियों को पाकिस्तान ले जाओ।"

यह उदाहरण उन स्थितियों को स्पष्ट करते हैं, जो पहले ही हमने शरणार्थी कैंप में स्त्रियों की बातचीत या मेहर के कथन के रूप में रखा है। लेकिन यह पीड़ा सिर्फ मेहर तक सीमित नहीं है, बल्कि उस दृश्य के बाद बंती भी कहती है, "वो इनकी मां–बेटियों को बेइज्जत करें, ये उनकी मां–बेटियों की इज्जत करे। मां–बेटियां बरबाद होने के लिए ही हैं।"

"एक पक्ष के लोगों ने स्त्रियों का अनसुना अपमान करने की वीरता दिखायी है, दूसरे पक्ष के लोग कैसे स्वीकार कर लें कि वे कम पशु हैं। पशुता की होड़ में पीछे क्यों रह जाएं?" विभाजन के दौरान पुरी के अंदर यह विचार तब आता है। जब उसके सामने स्त्री जीवन की त्रासदी का एक भयावह दृश्य उपस्थित होता है। जिसका वर्णन यशपाल ने इस तरह से किया है, "पैंतीस, पैंतीस

रुपए। कोई और बोलो पैंतीस रुपए में रह जाती है। पैंतीस रुपए एक, पैंतीस रुपए दो। और कोई बोलता है, तो बोलो! नहीं तो जाती है, अच्छी तरह देख लो। बोलो! .... पैंतीस रुपए तीन।

पुरी ने सोचा था, पुराने कपड़ों की नीलामी हो रही है, लेकिन फिर उसने सुना, "अच्छा बादशाहों, अब इसके लिए बोलो! नया कोरा, बिना बरता माल। शक हो तो अपने हाथ से टटोलकर देख लो।"

पुरी ने भीड़ के भीतर झांका।

भीड़ के बीचोबीच नीलाम करने वाला एक जवान लड़की को चुटिया से खींचकर खडा किए था। लड़की के शरीर पर कोई कपड़ा न था। माल ग्राहकों को अच्छी तरह दिखा देने के लिए उसने लड़की की कमर के पीछे घुटने को ठेस देकर, उसके सब अंगों को उभार दिया था। लड़की के आंसुओं से भीगे, पलकें मूंदें, चेहरे पर से उसके हाथ को भी खींचकर हटा दिया। लड़की के सूर्य की किरणों से अछूते शरीर के भाग छिले हुए संतरे की तरह, चेहरे की अपेक्षा बहुत गोरे और कोमल थे। भीड़ के बीच धरती पर कुछ और भी लड़कियां चेहरे बाहों में छिपाए घटनों पर सिर दबाए बैठी थीं। उनके कपड़े धरती पर पड़े थे।"

सच में स्त्रियों के साथ विभाजन के दौरान भेंड़–बकरियों जैसा ही व्यवहार किया गया। चाहे वह हिंदू रहीं हों या मुसलमान शरणार्थी काफिलों पर हमले करके, घरों के ताले तोड़कर जवान लड़कियों, स्त्रियों की लूट के माल की तरह खुली नीलामी की गई। स्त्रियों के नीलामी की यह घटना कोरी कल्पना नहीं है। बल्कि ऐतिहासिक सत्य है। झूठा–सच उपन्यास का पात्र जयदेव पुरी नीलामी की जिस घटना को अपनी आंखों से देखता है, वैसी ही घटना दूसरे शरणार्थी कैम्पों में सुनाई पड़ती थी। बलवंत सिंह का उपन्यास 'काले कोस' में भी ऐसी अफवाहों की चर्चा है, कि मुसलमान हिंदू या सिख लड़की को पाकिस्तान की सीमा से बाहर नहीं जाने देते, बल्कि वहीं खड़े–खड़े आठ आने प्रति स्त्री के हिसाब से बेच डालते हैं।

ऐसी ही खबरों से परेशान होकर 'काले कोस' की स्त्री पात्र गोविंदी अपने भाई सूरत से कहती है, "लोग बात करते हैं न कि लड़कियां नीलाम की जाती हैं।"

सूरत बहन की पीठ पर थपकी देकर समझाता है, कि मेरे जिंदा रहते किसी की मजाल भी है, जो तुम्हें छू सके। लेकिन लाहौर से दो स्टेशन पहले जब गाड़ी रुकी तो बलवाइयों के साथ करीमू बिरसा सिंह को खोजते हुए आता है। बिरसा शरणार्थी शिविर से पहले ही ट्रक द्वारा जा चुका था। इस सूचना पर करीमू ने पेशौरा सिंह से कहा, "मैं तुझे कुछ नहीं करूंगा, तो पेशौरा को लगा हो सकता है गाँव–देश का लिहाज करीमू में बाकी हो, लेकिन अगले ही क्षण करीमू ने तेवर बदलकर पेशौरा से कहा, तेरी लौडिया पटाखा है, और मुझे पसंद है, यह कह कर करीमू ने झपट कर गोविंदी का बाजू थाम लिया और खींचा। गोविंदी एक तिनके की भांति खिंचती चली गइ। उसकी हृदय विदारक चीत्कारें उस शोर पर छा गयीं। उसके आंसू सूख गए। वह हाथ फैलाकर चिल्लाई, मेरे पिताजी! मेरे बीरजी! मुझे बचा लो . ..... मुझे बचा लो।"

गोविंदी को बचाने के लिए पशौरा आगे झपटा तो उसका बाजू तलवार की एक वार से कटकर गिर गया और तुरंत बर्छों–छुरों की वार से निढाल होकर गिर पड़ा। यह गोविंदी तो सिर्फ उदाहरण है। इस त्रासदी में ऐसी लाखों गोविंदियां बरबाद हुईं, लुटी–पिटीं। स्त्रियों को ट्रेनों से, शरणार्थी कैम्पों से खींच लिया गया, उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया गया, उनके अंग काट दिए गए और उनकी हत्या कर दी गई, लेकिन घर–परिवार वाले बेबस आंखों से देखते रहे। अपनी आंखें बन्द कर लेते। क्योंकि उन्हें बचाने के लिए बढ़ने वाला हर कदम जल्द ही

थम जाता था। पुलिस वाले इतनी कम संख्या में होते कि सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं कर पाते थे। यह उपन्यास विभाजन के कारणों की तलाश करता हुआ विस्थापित समाज की त्रासदी को रेखांकित करता है।

विभाजन की यातना का स्वरूप पुरुषों और स्त्रियों पर भिन्न–भिन्न तरह से रहा। यह बात विभाजन केंद्रित उपन्यासों में बिल्कुल स्पष्ट है। इस संदर्भ में वीरेन्द्र यादव ने लिखा है, "पुरुषों के लिए जहाँ देश–विभाजन अपने वतन व ईंट–गारे की रिहाइश के दरबदर होना था, वहीं स्त्रियों के लिए यह दुहरी यातना थी। वे वतन और अपने शहर से दरबदर हुई हीं, उससे उसके अपने घर–परिवार ने भी बहिष्कृत सरीखा सुलूक किया। विभाजन की महात्रासदी के दौरान बिछुड़े मर्दों की परिवार में वापसी पर जश्न हुआ और खुशियां मनाई गईं, लेकिन स्त्री की वापसी पर मातम ही नहीं, बल्कि उसे घर की दहलीज से उलटे पांव तिरस्कृत कर वापस कर दिया गया। विडंबना यह है कि पुरुष सत्ता के इस खेल में स्वयं स्त्रियां भी शामिल थीं। कभी सास, तो कभी मां व बहन होने के बावजूद भी।"

उपन्यासकार ने दिखाया कि लाहौर के दंगों में बिछुड़ने के बाद जब बंती दिल्ली में अपने परिवार को तलाश कर घर पहुँचती है, तो किसी को खुशी नहीं होती बल्कि सास ने उसे फटकार दिया, "हट जा, दूर रह। बाहर निकल।" क्यों? मेरा घर है, मैं कहां जाऊँ? बंती ने गिड़गिड़ाकर सास के पांव पर सिंह रख देने के लिए झुकी।

"दूर रह, तुझे कह दिया। तू अब हम लोगों के किस काम की।" सास ने बंती का सिर पांव से परे ढकेल दिया।" सबसे बड़ा सवाल था कि – "कैसे घर में रख लेगी। मुसलमानों ने इसे छोड़ा होगा? उन्होंने घरों के दरवाजे तोड़कर औरतों को खराब किया, इन्हें छोड़ दिया होगा ..... स सौ–सौ मुसलमान...। धर्म क्या रहगया।" पहले सास ने घर से निकाला फिर पति ने कह दिया, "दो महीने मुसलमानों के घर रह आयी है, हम कैसे रख लें।" सास और पति से अपमानित निष्कासित बंती ने कहा, "मैं यहाँ मर जाऊँगी।" बंती दहलीज पर फट–फट माथा पटकती और चिल्लाती, मैं यहां ही मरूंगी।" तारा और गली के लोगों के लिए यह स्तब्धकारी घटना थी। "चेहरा खून से लथपथ, मक्खियां बैठ रही थीं। समीप कोरा लाल कपड़ा गली के फर्श पर पड़ा था। 'देखे तो बेशर्मो को! लाल कफन दे रहे हैं। अब वह सहागिन बन गई।" एक स्त्री क्रोध और घृणा से कह रही थी।"

नारी शुचिता के इस आचार–संहिता के पाखंड जिस स्त्री दुख में होती है, वह इस कथन से कहती है, "असंख्य नारियों ने पुरुषों की पाशविकता को सहा है। पुरुष को मनुष्य बना सकने के लिए स्त्री को कितना सहना पड़ेगा।" इन पंक्तियों में एक स्त्री का दुःख है, पीड़ा है, त्रास है और पुरुष वर्ग के प्रति घृणा भी है। सब जुल्म के लिए हम स्त्रियां ही रह गयी हैं। मर्द मर्दो को काटकर टुकड़े भले ही कर दें, उनकी बेइज्जती तो नहीं करतें"

इसी बेइज्जती से बचने के लिए और अपनी शुचिता को बचाए रखने के लिए न जाने कितनी स्त्रियों ने विभाजन के दौरान आत्महत्या कर ली थी। जिसकी संदर्भ विभाजन केंद्रित दूसरे उपन्यासों में मिलता है। भीष्म साहनी ने 'तमस' में दिखाया है कि जब सांप्रदायिक दंगे बहुत तेज हो जाते हैं, और चारों तरफ लूट–पाट, हत्या, बलात्कार शुरू हो जाता है, तो ऐसी स्थिति में स्त्रियों का एक झुंड उस पक्के कुएं की ओर बढ़ता जा रहा था जो ढलान के नीचे दाएं हाथ बना था और जहाँ गांवों की स्त्रियां नहाने, कपड़े धोने, बतियाने के लिए जाया करती थीं। मंत्रमुग्ध सी सभी उस ओर बढ़ती चली जा रही थीं। किसी को उस समय ध्यान नहीं आया कि वे कहां जा रही है। छिटकी चांदनी में कुएं पर जैसे अप्सराएं उतरती आ रही हों।

सबसे पहले जसबीर कौर कुएं में कूद गयी। उसने कोई नारा नहीं लगाया, किसी करे पुकारा नहीं, केवल चाहे गुरु कहा और कूद गई। देवसिंह की घरवाली अपने दूध पीते बच्चे को छाती से लगाकर ही कूद गयी। .... स्त्रियों और बच्चों की चीखें कुएं में से बाहर आयी और बाहर बाहर की 'अल्लाह–हो–अकबर' और 'सत सिरी अकाल' के नारों में मिल गयी थी।"

उपन्यास की यह घटना ऐतिहासिक यथार्थ है। इस घटना की ऐतिहासिकता के संदर्भ में राजकुमार सैनी ने लिखा है, 'उपन्यासकार से व्यक्तिगत रूप से पूछतांछ करने पर यह तथ्य भी प्रकाश में आया कि जिला रावलपिंडी में थोहा खालसा नामक स्थान पर यह घटना घटी। घटना के घट जाने के बाद स्वयं उपन्यासकार इस स्थान पर गया था और वहां वह कुआं भी अपनी आंखों से देखा था जो कई दिनों तक सड़ता रहा था।" देश के बंटवारे के दौरान पंजाब की सरहद पर हुए भयावह सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि पर भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' विभाजन की नियामक शक्तियों को बेपर्दा करता है।

विभाजन पर आधारित उपन्यासों का दस्तावेजी महत्व है, वह इसलिए कि उपन्यासकारों ने विभाजन की विभीषिका के दौरान पर हुए अत्याचारों को मात्र कथात्मकता ही नहीं प्रदान की बल्कि उसे स्त्री संदर्भ भी प्रदान किया। स्त्रियों की दुर्दशा के रोंगटे खड़े कर देने वाले जो चित्र यशपाल ने 'झूठा–सच' में बलवंत सिंह ने 'काले–कोस' में और भीष्म साहनी ने 'तमस' में प्रस्तुत किये हैं वे अविस्मरणीय हैं। अवस्मरणीय वे उपन्यास भी हैं जिनके स्त्री पात्र जो विभाजन के साथ और विभाजन के बाद अपने घर, परिवार, समाज को पुनर्स्थापित करने के लिए निरन्तर संघर्ष करती रही। इसलिए 'रेणु' के 'जुलूस' की पवित्रा को और कमलेश्वर के 'लौटे हुए मुसाफिर' की नसीबन को नहीं भुलाया जा सकता।

दरअसल इन उपन्यासकारों ने नारी प्रश्न को महज विभाजन के दंगों तक ही सीमित न करके इसे व्यापक सामाजिक संरचना का हिस्सा बनाते हैं। यहाँ स्त्री होने के कारण हिंसा और यौन हिंसा की दुहरी शिकार होने के बावजूद स्त्रियां प्रतिरोध को भी स्वर प्रदान करती हैं। यद्यपि यह प्रतिरोध कहीं शांत है कहीं मुखर।

'झूठा–सच' की तारा बेमेल विवाह के मामले में अपने भाई जयदेव पुरी से नाराज होकर अपना सिर पटक देती है। विवाह के बाद पति सोमराज जब सुहागरात के अवसर पर उसे अपमानित करते हुए हाथ उठाता है, तो तारा ने चेहरे पर से हाथ हटाकर आंसुओं से भरी लाल आंखों से सोमराज की ओर घूरकर धमकाया। "खबरदार हाथ उठाया तो।" और अंततः दंगाई भीड़ के हमले की आड़ में वह अपने बेमेल विवाह से मुक्ति पाने के लिए पति के घर से निकलकर चली जाती है। उपन्यास की दूसरी प्रमुख पात्रा कनक अपने पति जयदेव पुरी के दुर्व्यवहार से तंग आकर विवाह विच्छेद का निर्णय ले लेती है। कनक कहती है, "हम लोगों की रुचि और प्रकृति एक–दूसरे के अनुकूल नहीं है। लोक–लाज के लिए जितना निबाह सकती थी, निबाह दिया। अब नहीं निबाह सकती।" और कनक यह सवाल भी उठाती है कि – "पुरुष ही चुन सकता है, स्त्री नहीं चुन सकती। प्रश्न तो मेरे जीवन का है, किसी दूसरे के निर्णय का प्रश्न क्या?"

'झूठा–सच' में यशपाल स्त्री प्रश्न को बेमेल विवाह, विधवा समस्या, बेटे–बेटी का भेद यौन–स्वतंत्रता, स्त्री की इच्छा, प्रेम–सम्बन्धों की स्वतंत्रता तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को लेकर स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण के विभिन्न आयामों तक विस्तृत करते हैं। उपन्यासकार ने लिखा है कि – "बहुत ध्वंस हुआ परन्तु समाज को जकड़ में दबाए रखने वाली मजबूत परतें भी ऐसे टूट गई हैं, जैसे जेल में बंद लोगों को

भूडोल में जेल की दीवारें गिरने से चोट तो लगे परन्तु बन्द लोग स्वतंत्र हो जाएं।"

विस्थापन के बाद स्त्री जीवन में आए परिवर्तनों को उपन्यासकार तारा के शब्दों में यूं अभिव्यक्त करता है, "जो लड़कियाँ जीविका कमाने का साहस कर रही हैं वे अपना भाग्य दूसरों के हाथ में क्यों दे दें? अब तो दिल्ली में लड़कियाँ सभी जगह काम करती दिखाई दे रही हैं ..... विभाजन से पहले मैं नौकरी कर लेने की कल्पना करती थी तो खास साहस की आवश्यकता जान पड़ती थी अब तो साधारण बात है।" यशपाल एक युगदृष्टा लेखक थे। वे तात्कालिकता का अतिक्रमण कर मानव मूल्यों की गतिशीलता की पहचान का हुनर रखते थे। यही कारण है कि उनकी दृष्टि जहां विभाजन की विभीषिका पर केंद्रित हुई वहीं इस त्रासदी के पार जाकर उन्होंने इसके कुछ सकारात्मक पहलुओं को भी रेखांकित किया।

यशपाल के 'झूठा–सच' उपन्यास की तारा का जीवन संघर्ष पढ़ते हुए फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'जुलूस' की नायिका पवित्रा की याद न आए ऐसा संभव ही नहीं है, बल्कि पवित्रा की अगली कड़ी ही तारा हैं। विभाजन के बाद जो स्थितियां पंजाबकी थीं लगभग वैसी ही स्थिति बंगाल की भी थी। सांप्रदायिक दंगों के दौरान सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा स्त्रियों, दलितों, और पिछड़ों की। पंजाब की शरणार्थी स्त्रियों जैसी यंत्रणा बांगली स्त्रियों की भी उठानी पड़ी थी। जिस मुस्लिम परिवार से ठाकुरबाड़ी का पारिवारिक संबंध था, उसी घर का कासिम पवित्रा के होने वाले दूल्हे 'विनोद' की हत्या करता है। यह बात..... काली की मां ने बेतिया कैंप में चुपचाप बतलाया था – "कासिम भाले की नोक पर विनोद का कटा हुआ सिर लेकर सबसे आगे था।" और फिर पवित्रा को हासिल करने के लिए कासिम ठाकुरबाड़ी में पवित्रा के पिता को गाली देते हुए आया था, "साला बूडार बिटी कोथाय?" फिर पवित्रा ठाकुरबाड़ी से निकल कर कैसे वाग्दीपाड़ा पहुँची, वह नहीं जानती। उसकी आंखें खुली थीं – हिंदुस्तान के एक शरणार्थी कैंप में कटिहार स्टेशन पर। होश आते ही पवित्रा ने पूछा था – "बाबा कहां हैं, मां कहां? और लोग कहां? किसी ने कोई जवाब नहीं दिया था, उसने फिर कोई सवाल नहीं किया।" तब से पवित्रा निरन्तर संघर्ष करती है, विस्थापित लोगों को फिर से बसाने के लिए। लेकिन इस दौरान अधिकारी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में मेम्बर से लेकर तालेवर गोढ़ी तक पवित्रा पर नजर गड़ाए रहे। एक ऐसी स्त्री जिसका इस दुनिया में कोई नहीं था।

"आधी तालेवर गोढ़ी तक पवित्रा पर नजर गड़ाए रहे। एक ऐसी स्त्री जिसका इस दुनिया में कोई नहीं था।"

"आधी रात को जब सारी कालोनी सो गयी, पवित्रा हिचकियां लेकर रोने लगी, उसका कोई नहीं इस दुनिया में? इतनी अकेली.....? मां . .... आ..... गो। बाबा .... अ–आ।" पवित्रा को सबसे ज्यादा दुःख तब हुआ, जब कालोनी के ही नए लड़के जो फेरी करते थे, जिनको बसाने में पवित्रा जीवन खपा रही थी, जब एक दिन प्रण करते हैं कि – "इस कालाचांद को, और उसकी मां को और पवित्रा को कालोनी से निकाल कर ही वे पानी पियेंगे।"

पवित्रा के रूप में रेणुजी ने एक ऐसी स्त्री के जीवन–संघर्ष को दिखाया है, जिसका इस दुनिया में कोई नहीं रहा, जिसके सबके हित के लिए संघर्ष किया। उसकी भावनाओं को समझने वाला कोई नहीं, उसकी कद्र किसी ने नहीं की। हर किसी ने सिर्फ उसकी देह का स्पर्श पाना चाहा, उसकी आत्मा, उसकी भावनाओं को कुचलते–मसलते हुए।

पवित्रा के इस दुखःदर्द के पीछे एक नहीं अनेकों कासिम थे। इससे यह समझने में देर नहीं लगती कि पुरुष घर से बाहर निकलते ही स्त्री के मां–बहन, बेटी पत्नी आदि रूप भूलकर उसके

मादा रूप को ही देखता है। इसलिए कालाचांद की मां पूछती है – "दीदी ठाकरून, एक बात पूछूं?..... बुरा ना मानिएगा। आप पढ़वा–पंडित है। भूल–चूक हो, माफ कीजिएगा।..... पूछती हूँ, सब कुछ तो मिला, अपने देश का अन्य, 'चास–बास', माछ, तरी, तरकारी सब कुछ। अपने जुमापुर गांव में जैसा मिलता था, यहां भी मिलता है। हवा पानी भी वही.... लेकिन। 'मन के मानुस' के जैसा कोई यहाँ नहीं?..... तुमने एक बार कहा था.... यहाँ भी सैकड़ों कासिम हैं, सैकड़ों कासिम हैं। एक भी 'विनोद' नहीं?"

पवित्रा ने हंसकर जवाब दिया, "मन के मानुस' जैसा भी मानुस है यहाँ।" पवित्रा को यहां नरेश के रूप में मन का मानुस मिल गया था, जो बिलकुल विनोद जैसा था, लेकिन पवित्रा इतने कासिमों के बीच थी, कि उसे हर पल यह भय बना रहता था कि कहीं नरेश भी किसी कासिम द्वारा न छीन लिया जाए।

'रेणु' पवित्रा के माध्यम से एक संघर्षरत स्त्री की छवि अंकित करते हैं, जो अपने संघर्ष से नहीं हटती, दुनिया चाहे जिस तरह से देखे। रेणु ने इस उपन्यास में पूर्वी बंगाल से हुए विस्थापन की समस्या को उठाया है। इसलिएव यह उपन्यास अन्य उपन्यासों से एक अलग पहचान रखता है।

विभाजन केंद्रित उपन्यासों में उपन्यासकारों में ऐसे स्त्री पात्रों का भी सृजन किया है, जो विस्थापित नहीं होती, लेकिन विभाजन और विस्थापन का मुखर विरोध करती है जिनके लिए जाति, धर्म, क्षेत्र का कोई अर्थ नहीं है इनके अंदर वृहत मानवीयता है और मानव होने के नाते मानवमात्र के प्रति पीड़ा है, दुःख है। 'तमस' की राजो और लीजा, 'लौटे हुए मुसाफिर' की नसीबन और 'कितने पाकिस्तान' की एडबिन जेनिब ऐसे ही मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रेत पात्र है।

'तमस' का हरनाम सिंह जब एहसासन अली (अनजाने में) के घर में आश्रय पाता है, तो एहसासन अली और उसका बेटा घर पर नही थे। एहसान अली की पत्नी हरनाम सिंह और उसकी पत्नी को लस्सी पिलाती है, लेकिन दूसरे ही क्षण बोलती है.... 'सुनो जी सरदार जी मैं तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं मेरा घरवाला और बेटा दोनों गांव वालों के साथ बाहर गए हुए हैं। वे अभी लौटते होंगे। मेरा घरवाला तो अल्लाह से डरने वाला आदमी है, तुम्हें कुछ नहीं कहेगा, पर बेटा लीगी है और उसके साथ और लोग भी हैं। तुमसे वे कैसा सलूक करेंगे मैं नहीं जानती। तुम अपना नफा–नुकसान सोच लो।"

हरनाम सिंह देर तक गहरी सोच में डूबा बैठ रहा, फिर शिक्षित सी आवाज में बोला –'सतवचन, जो चाहे गुरू को मंजूर होगाा वही होगा। तेरे दिल में रहम जागा, तूने दरवाजा खोल दिया अब। तू कहेगी बाहर चले जाओ तो हम बाहर चले जाएंगे। चल बंतो उठ.....।" और हरनाम ने ज्यों ही सांकल खोलने के लिए हाथ उटाया तो आंगन में खड़ी राजो बोल पड़ी, "न जाओ जी, रुक जाओ सांकल चढ़ा दो। तुमने मेरे घरर का दरवाजा खटखटाया है, दिल में कोई आस लेकर आए हो। जो होगा देखा जाएगा, तुम लौट आओ।"

फिर भूसे वाले घर में दोनों को बंद करवा देती है। रात में राजो हरनाम सिंह और बंतो को गांव से बाहर ढलान तक छोड़ने आयी तो हरनाम सिंह के हाथ में बंदूक देकर बोली – "जाओ हुण, रब्ब राखा सीधे किनारे–किनारे चले जाओ। आगे तुम्हारी किस्मत। और उसकी आवाज आर्द्र हो गई। फिर कुर्ते की जेब में हाथ डालकर पोटली बंतो की तरफ बढ़ाते हुए बोली, "ये तुम्हारे ट्रंक में से मिले हैं, तुम्हारे दो गहने हैं, मैं निकाल लायी हूँ। तुम्हारे आगे कठिन समय है, पास में दो गहने हुए तो सहारा होगा।"

उपन्यासकार ने स्पष्ट कर दिया है, "हिंदू या मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में इस प्रकार के शुद्ध मानवीय धरातल पर आकर सोचने वालों को संख्या नाम मात्र नहीं है। कभी तो केवल उन राजनीतिज्ञों, नेताओं और धर्म पंडितों की थी, जो इस प्रकार की शक्तियों को केवल बढ़ाते।"

भारत–विभाजन के बाद बने पाकिस्तान ने वे परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं जिनका सामना विश्व इतिहास पहली बार कर रहा था। जिन्ना और नेहरू ने अपने–अपने मुल्क और देश में भयंकर खून–खराबे और दंगों के बीच स्वतंत्र राष्ट्र का झंडा फहराया। "लाशों और घायलों के सीनों पर चढ़कर उधर जिन्ना आजाद पाकिस्तान का और इधर नेहरू आजाद हिंदुस्तान का झंडा फहराने लगे।" विभाजन के बाद प्रारम्भ हुआ बड़ी संख्या में लोगों का विसथापन और इसी विस्थापन ने जन्म दिया, लुटेरी प्रवृत्तियों को अपना घर–बार छोड़कर अपने मुल्क की और निकले करावां भयंकर लूट–पाट और खून–खराबे के शिकार हुए। लुटेरों की सबसे अधिक शिकार महिलाएं बनीं। ऐसी ही एक कथा 'कितने पाकिस्तान' की रेतपरी 'नेनिब' की है। जिसे बूटा सिंह ने उसका मूल्य चुकार बचायां सोलह–सत्रह साल की जेनिब अपने गाँव ढाणी से मुसलमानी कारवां के साथ लकीर के उस पर जाने के लिए निकली थी, लेकिन पीछे जाने के कारण वह एक हिंदू युवक के हत्थे चढ़ गयी। इस प्रकार जबरदस्ती उठाकर लाई गई स्त्रियां लूट का माल समझी जाती थीं, जेनिब को भी वही माना गया – ''तीसरी ढाणी के उस पार..... पाकिस्तान बनने की लकीर खींची जा चुकी है। उसी लकीर के बाद यह मुसलमान लड़की मेरे हिस्से आई है.....मैं इसे काफिले वालों से छीनकर लाया हूँ..... इसे मेरे हवाले कर दो।''

बूटासिंह और जोनिब का 'आनंद कारज' (विवाह) हो जाता है। यह विवाह नफरत की सांप्रदायिक संस्कृति के विरुद्ध सामाजिक संस्कृति की नींव रखता है किंतु बाद में जेनिब को प्रशासन द्वारा जबरदस्ती पाकिस्तान भेज दिया जाता है किंतु बाद में जेनिब को प्रशासन द्वारा जबरदस्ती पाकिस्तान भेज दिया जाता है, पर बूटासिंह उसे पाने के लिए इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेता है, बावजूद इसके बूटासिंह जेनिब को प्राप्त नहीं कर पाता औश्र विभाजन के बाद मनुष्य की आत्मा विभाजित हो जाने की दारुण कहानी दम जोड़ देती है।

'तमस' की 'राजो' से भी ज्यादा मानवीय संदर्भ जुड़े हैं, 'लौटे हुए मुसाफिर' की नसीबन के साथ नसीबन बस्ती के हर एक दुःख पर मरहम चाहती है नसीबन और बच्चन को लेकर इस बस्ती में तरह–तरह की बातें, अफवाहें हैं। इन अफवाहों को फैलाने का काम साई, मकसूद औश्र यासीन करते हैं। बच्चन की पत्नी मर चुकी है। नसीबन बच्चन के दोनों छोटे बच्चों को प्यार देती है। इसका लोग गलत मतलब निकालते हैं, और सांप्रदायिक रंग देना चाहते हैं बस्ती में जब परिस्थितियां भयानक हो जाती हैं और पाकिस्तान बनने का एलान हो जाता है, तब बच्चन आदमी भेजता है। अपने बच्चों को लाने के लिए। नसीबन सत्तार के साथ बच्चों को भेज देती है। तब उसकी मनःस्थिति के बारे में कमलेश्वर ने लिखा है, ''दिन भर नसीबन बहुत उदास रही। रात को जब सत्तार दोनों बच्चों को लेकर चलने लगा, तब नसीबन ने एक पोटली उसके हाथ में थमाई थी।'' और कहा यह भी बच्चन को दे देना, उसके जेवर हैं। केवल जेवर ही नसीबन ने नहीं दिए हैं। जेवरों के साथ–साथ कुछ चांदी के रुपए भी हैं। ये रुपए नसीबन के हैं, वह सत्तार से कहती है, 'क्योंकि हैं तो अपने। विपदा में घिरा है, बिचारा! इधर चोरी छिपे रहते हुए काम–धाम भी नहीं कर पाया होगा, ऊपर से बच्चे जो रहे हैं, कुछ जरूरत भी तो पड़ेगी उसे.....कह देना अपने ही समझकर खर्च कर ले। कोई बात मन में ने लाए।''

बच्चन के बच्चों पर प्यार करते समय नसीबन ने कभी सोचा था और न उसे सोचने की जरूरत पड़ी थी कि वे हिंदू बच्चे हैं। उसका वात्सल्य धर्म से ऊपर उठा हुआ था। अगर धर्म की व्याख्या मनुष्य को मनुष्य के निकट लाना इतनी ही है, तो फिर नसीबन लीग के सियासी कारकून की अपेक्षा मस्जिदों में कुरआन का पाठ करने वाले मौलवियों की अपेक्षा 'सच्ची मुसलमान' है। नसीबन निर्भाक स्वभाव की स्त्री है। जब संघियों को पता चलता है कि नसीबन के घर हिंदू बच्चे हैं, तो उन्हें लेने के लिए आते हैं ताकि वे अनाथालय में उनकी व्यवस्था कर सकें। नसीबन निर्भीकता का परिचय देती है। ''हमें पता चला है, कि आप दो हिंदू बच्चों का धर्म परिवर्तन करने वाली हैं.....यह नहीं हो सकता। क्या धरम... .बच्चे किसी अनाथालय में नहीं जाएंगे। हम यह झंझट नहीं जानते.....रहीं उनके मुसलमान होने की बात सोलह आने गलत है।.....और ये बच्चे हैं कोई काठ–किवाड़ तो नहीं जो पड़े रहेंगे वहां। खूब आए आप लोग लोग बच्चे हवाले कर दो। वाह भाई, वाह ! जो करना है करो जाकर..... पुलिस नहीं.....लाप्टेन को बुला लाओ। हरे, हम काहे काहे को बनायेंगे किसी को मुसलमान..... हमारे क्या बाल बच्चे नहीं हैं.....।''

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं नसीबन का हृदय अपरिवर्तनशील है। सहज मातृ–हृदय को लेकर वह जीती है। वह प्रवाह के साथ बहती नहीं है। तिरस्कार और नफरत उसके स्वभाव में है, ही नहीं। उसके बारे में इतनी ही कहना होगा कि धर्म और संप्रदाय से भी ऊपर उठकर केवल मनुष्य मात्र को सोचनेवाली यह अशिक्षित गवांर स्त्री हजारों पढ़े–लिखे परंतु संकुचित और सांप्रदायिक लोगों को पराजित कर देती है, अपने इन्हीं मानवीय गुणों के कारण।

विभाजन पर लिखे गए बहुत कम उपन्यास में अंग्रेज पात्रों की मानसिकता को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। यहां दो उपन्यास में अंग्रेज पात्रों के माध्यम से उनकी नीतियों का पर्दाफाश किया गया है। पहला भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' के अंग्रेज पात्र रिचर्ड और लीजा तथा दूसरा उदाहरण कमलेश्वर के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' का पात्र, लार्ड माउंटबेटन और एडबिना हैं। ये पात्र अंग्रेज अधिकारियों की दोहरी मानसिकता को चित्रित करते हैं। सन् 1946 के बाद अंग्रेजी भारत से पूर्णतः निराश हो चुके थे। इसी कारण ये तटस्थ हो गए थे। बढ़त सांप्रदायिकता पर एकदम चुप रहते थे। क्योंकि नीति यही थी कि 'फूट डालों शासन करो' इसलिए रिचर्ड लीजा से कहता है, ''अगर प्रजा आपस में लड़े तो शासक को किस बात का खतरा है।''

न्याय सुरक्षा और कानून का पाठ सारी दुनिया को पढ़ाने वाले अंग्रेजी इस समय दोहरी जिंदगी के शिकार हो चुके थे। उनकी इस मानसिकता का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण भीष्म जी ने किया है। अंग्रेजी स्त्री (लीजा) अंग्रेजी अधिकारियों के विसंगत व्यापार से क्षुब्ध हो उठती है। जिसका चित्रण भी हुआ है कि पाठकों की सहानुभूति उस स्त्री तक विस्तृत की गई है। रिचर्ड की पत्नी इन विसंगतियों को सह नहीं पाती। वह भीतर से पूर्णतः क्षुब्ध हो जाती है। जब फसाद शुरू होता हो तो तुम कहते थे कि ये लोग तुम्हारे खिलाफ लड़ रहे हैं।'' हमारे खिलाफ भी लड़ रहे हैं और आपस में भी लड़ रहे हैं। धर्म के नाम पर आपस में लड़ते है, पर देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं।''

रिचर्ड की इस बात से लीजा कहती है ''बहुत चालाक नहीं बनो रिचर्ड। देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।'' लीजा की यही बात अंग्रेजी अधिकारियों के दोहरे चरित्र को उजागर करती है, और उसका यह कहना.....''तुम इन्हें लड़ने से रोक भी तो सकते हो। आखिर हैं

तो ये एक ही जाति के लोग'' जीला को पाठकों की सहानुभूति से जोड़ता है।

अंग्रेज अधिकारियों की यह विसंगति संपूर्ण ब्रिटिशराज की विसंगति थी। इस विसंगतियों से कमलेश्वर ने भी 'कितने पाकिस्तान' में पर्दे हटाए हैं। विभाजन के बाद की स्थितियों के लिए अंग्रेज अधिकारियों की पत्नियां उन्हें दोषी मानती थीं। इसलिए विभाजन के बाद माउंटबेटन ने अपनी पत्नी से गुस्से में कहा था कि ''तुम विभाजन के सताए, बरबाद हुए, मारे हुए लोगों की हिमायत मत करो.....सामाग्रज्यों के इतिहास में ये मामूली घटनाएं हैं।.....और सुनो एडबिना माउंटबेटन तुम एडविना एशले नहीं हो..... ..तुम इंडिया के वायसराय और वर्गनर जनरल की ब्याहता बीबी हो। इसलिए बिटेन साम्राज्य की परंपराओं का पालन करो.....शरणार्थियों की तकलीफ और हमारे फैसले के तहत बनाए गए पाकिस्तान की सरहद पर जो नरसंहार हो रहा है, उस पर आंसू बहाना बंद करो, ब्रिटिश साम्राज्य आंसुओं के हस्तक्षेप को मंजूर नहीं करता।''

मांउटबेटन में मानवता समाप्त हो चुकी थी और पशुता का उदय हो चुका था। इसलिए वह एडबिना से कहता है, ''इन हिंदुस्तानी विस्थापित और मुर्दों के लिए तुम्हारी आंखों में जो आंसू आते हैं वह ब्रिटिश राजघराने और ब्रिटिश जाति के लिए लांछन है। उन्हें सुखाने और राहत पाने के लिए तुम भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के कंधे पर सर रखकर, उसके सीने से चिपककर ब्रिटिश साम्राज्य के पश्चाताप का इजहार करो, ये मुझे बर्दाश्त नहीं।''

भारत विभाजन की त्रासदी का गहरा अफसोस था एडबिना को, वह शुब्ध होकर माउंटबेटन से कहती है, ''विभाजन की जो त्रासदी, अमानवीय त्रासदी तुमने पैदा की है, उसे देखकर एल्पस और प्रेरेनीज की पहाड़ी चट्टानें भी रो पड़तीं।..... क्या तुम्हारे ईसाई करूणा बिल्कुल मर गई है।'' एडबिना का यह मानवता उसका दुःख पीड़ा, उसका द्रवित हृदय की उसे पाठक वर्ग की सहानुभूति से जोड़ता है। ये स्त्री पात्र स्त्री मन के गहरे यथार्थ से हमें जोड़ते हैं, जहां व्यक्ति मानव मात्र को दुःख से दुःखी होता है। स्त्री की पीड़ा उसका दुःख, करूणा, ममता, वात्सल्य, जाति, धर्म, रंग, वर्ण से परे जाकर मानवता से व्यापक स्तर पर जुड़ जाता है एक स्त्री के जीवन और उसके संघर्ष को समझने के लिए कितने पाकिस्तान के सांकेतिक पात्र हिंदुस्तानी तहजीब के विचार को देखना आवश्यकता है। ''औरत की आबरू ही संस्कृति के मायरों को तय करती है, जो तहजीब अपनी औरत की आबरू को इज्जत नहीं दे सकती, वह रोग, यूनान और मिस्त्र की तरह मिट गई..... चाहे नृशंस ही लगे, पर हिंदुस्तान में जब उसकी तहजीब औरत की आबरू की रक्षा नहीं कर सकती, तो खुद औरत ने अपनी सभ्यता की रक्षा की खातिर अपना बलिदान देकर इस संस्कृति का मुंह उज्जला किया है.....और दारा शिकोह की बीबी नादिरा बानू और बकिया ओहदेदारों की औरतें उसी व्यक्तिगत वजूद और हिंदुस्तानी तहजीब औश्र परंपरा के तहत मौत को गले लगाने के लिए तैयार है..... इस जालिम दौर में अगर औरत अपनी आबरू की हिफाजत के लिए विद्रोह करती है तो वह हिंदुस्तान औरत का फैसला है और उसे इसका हक है। जौहर की वरायत परंपरा बर्बर है, लेकिन औरत का अस्तम की बेकद्री और उसका उल्लंघन करना तो और भी बड़ा बर्बरता है।''

हिंदुस्तानी तहजीब की इसी परंपरा और अपनी इज्जत–आबरू की रक्षा के लिए बंती ने सर पटक–पटक कर पति के चौखट पर मर जाता बेहतर समझा, तारा और कनक ने विद्रोह का रास्ता चुना, पवित्रा ने संघर्ष का, राजों ने मानवता का, नसीबन ने मातृत्व और वात्सल्य का। लीजा और एडबिना ने परदुखकातर व्यक्तित्व का परिचय दिया। यह अलग–अलग स्त्रियां स्त्री जीवन और संघर्ष को विभिन्न तरीके से देखती

और जीती हैं, जो अपनी संपूर्णता में स्त्री के व्यापक जीवन संघर्ष को समेटता है।

संदर्भ

- यशपाल, झूठा सच, दूसरा खंड (देश का भविष्य), पृ. 99
- यशपाल, झूठा सच, प्रथम खंड (पतन और देश), पृ. 316
- बलवंत सिंह काले कोस, पृ. 303
- वीरेंद्र यादव, उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता, पृ. 63
- यशपाल, झूठा–सच दूसरा खंड, देश का भविष्य, पृ. 101
- भीष्म साहनी, तमस, पृ. 218–219
- राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी, व्यक्ति और रचना, पृ, 136
- यशपाल, झूठासच, खंड–1 (पतन और देश), पृ. 110
- यशपाल, झूठासच, खंड–2 (देश का भविष्य), पृ. 212
- फणीश्रनाथ रेणु, जुलूस, पृ. 61
- भीष्म साहनी, तमस, पृ. 193
- भीष्म साहनी, तमस, पृ. 195
- सूर्यनारायण रणसुभे, देश विभाजन और हिंदी कथा, साहित्य, पृ. 117
- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 106
- कमलेश्वर, लौटे हुए मुसाफिर, पृ. 76
- भीष्म साहनी, तमस, पृ. 47
- कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृ. 52

Copyright © 2015 Dr. R.P.Verma. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.